ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 253-256

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

वैदिक कालीन भाषा वैज्ञानिक तत्त्वः प्रातिशाख्यों के संदर्भ में

विनीता सिंह

एसो0 प्रोफेसर– संस्कृत, के0 एम0 ए0 एस कन्या महाविद्यालय, आर्य समाज, भूर, बरेली (उ0प्र0) भारत

Received-21.06.2022, Revised-25.06.2022, Accepted-29.06.2022 E-mail: vinita1963singh@gmail.com

सारांशः – *प्रातिशाख्य 'वेद' का लक्षण ग्रन्थ है । प्रातिशाख्यों में वेद का बाह्यस्वरूप निर्दिष्ट किया गया है । ऋक् प्रातिशाख्य के सूत्रों में पांच प्रकार से वेदाभ्यास का वर्णन है अध्ययन, विचार, अभ्यास, जप और अध्यापन । अध्ययन का अर्थ है वेद का श्रवण, विचार का अर्थ है मननद्य विचार अर्थतः तथा लक्षणतः दो प्रकार से किया जाने पर ही फलप्रद होता है निरुक्त आदि के द्वारा अर्थ का विचार प्रस्तुत किया जाता है । शास्त्रोक्त कथन है कि "लक्षणं यो न वेत्यृक्षु न कर्मफलभाग्भवेत् । लक्षणजो हि मत्राणां सकल भद्रमस्नुते।।"*

कुंजीभूत शब्द– वेद, मननद्य, प्रतिशाखेषु, फलप्रद, निरुक्त, वेदाभ्यास, पार्षद शब्द, काशिकाकार, जगधर, प्रवचन।

मन्त्रों के लक्षणों को जानने वाला ही समग्र कल्याण को प्राप्त करता है अतः लक्षण का वर्णन पहले किया जाता है क्योंकि अर्थ का ज्ञान लक्षणपूर्वक ही होता है। मन्त्र को जानने के अभिलाषी व्यक्ति को प्रथमतः स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा, देवता, विनियोग तथा ऋषि का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इन्हीं पदार्थों के ज्ञान के लिए प्रातिशाख्यों की आवश्यकता हुई । प्रातिशाख्य शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रतिशाखेषु भवं प्रातिशाख्यम' की जाती है। इसके अनुसार वेद संहिता की प्रत्येक शाखा के लिए पृथक् प्रातिशाख्य का निर्माण होना स्पष्ट होता है । प्रातिशाख्यों के लिए पार्षद शब्द का भी प्रयोग किया जाता रहा है क्योंकि इनका निर्माण वैदिक शाखाओं के अध्यताओं के संघ या चरणों द्वारा स्थापित विद्वत परिषदों में किया जाता था । एक चरण के सदस्य एक बंद की विभिन्न शाखाओं से भी सम्बद्ध हो सकते थे। अतः प्रातिशाख्य चरण के नाम से भी प्रसिद्ध हो जाते थे । काशिकाकार तथा जगधर के अनुसार चरण का अर्थ वेद की किसी एक शाखा से सम्बद्ध अध्येताओं का समूह है।[1] प्रत्येक चरण में आवश्यकतानुसार परिषदें होती थी । चरण शब्द से किसी एक संहिता के विभिन्न आचार्यों के प्रवचन द्वारा पाठ भेद होने के कारण अवान्तर विभागों में विभक्त हुई सभी शाखाओं का बोध होता है[2] 'शाखां शाखां प्रति प्रतिशाखां, प्रतिशाख भवं प्रातिशाख्यम' के अनुसार वेद की एक–एक शाखा के नियमों से सम्बद्ध ग्रन्थ को प्रातिशाख्य कहा जाता था, जबकि यास्क तथा कुमारिल भट्ट के अनुसार प्रातिशाख्य वेदों के एक–एक चरण की सभी शाखाओं के नियमों से सम्बद्ध थे । डा0 भोलानाथ तिवारी ने 'प्रातिशाख्य' शब्द के 'प्रति' का अर्थ 'प्रत्येक' मानते हुए प्रातिशाख्य के नियमों को प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध माना है[3]। डा० कुन्दन लाल शर्मा प्रातिशाख्य को एक वेद की कई शाखाओं से सम्बद्ध मानते हैं[4]। इस विषय में यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रातिशाख्यों का सम्बन्ध वेदों की कुछ शाखाओं से है ।

अपवाद के रूप में प्रातिशाख्य वेद की प्रत्येक शाखा से सम्बद्ध भी प्राप्त होते हैं जैसे– वाजसनेयि प्रातिशाख्य शुक्ल यजुर्वेद की समस्त पन्द्रह शाखाओं के लिए निर्मित माना जाता है।[5]

प्रातिशाख्यों की गणना शिक्षा वेदांग के अन्तर्गत की जाती है । इन दोनों के सम्बन्ध के विषय में भाष्यकार उव्वट का कथन है कि शिक्षा में उपदिष्ट वर्णसमाम्नाय में से जितने वर्षों का उपयोग किसी शाखा में होता है, उनको स्वीकार करके प्रातिशाख्यों में काम में लाया जाता है[6] एक शिक्षा में उच्चारणादि से सम्बद्ध जो नियम सामान्यरूपेण प्रतिपादित किए जाते हैं, उन नियमों को बंद की विशेष शाखाओं में कैसे लागू किया जाए, इसका निर्णय प्रातिशाख्य करते है । इस प्रकार प्रातिशाख्य शिक्षा पर आधृत है । शिक्षा ग्रन्थ अनेक अंशों में प्रातिशाख्यों के पूरक हैं। उव्वट ने प्रातिशाख्यों के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए कहा है।

"शिक्षा छन्दो व्याकरणे सामान्येनोकत्लक्षड़म् तदेवगिह शाखायामिति शास्त्रप्रयोजनम्"[7] उपलब्ध प्रातिशाख्यों तथा ग्रंथों का वेद क्रमानुसार विवरण निम्नवत है।

ऋक् प्रातिशाख्य– यह ऋग्वेदीय प्रातिशाख्य है। इसका सम्बन्ध ऋग्वेद की किसी एक शाखा से है– यह निश्चय करना कठिन है। इसके रचयिता आचार्य शौनक है। वे शैशिरीय शाखा के अनुयायी थे प्रातिशाख्य के उपोद्घात में आचार्य ने प्रतिज्ञा की है कि वे शैशिरीय शाखा के उच्चारण सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान के लिए इस प्रातिशाख्य शास्त्र का कथन करेंगे[8] तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के वैदिकाभरण भाष्य में गार्ग्यगोपालयज्वा ने ऋक् प्रातिशाख्य को शाकल और बाष्कल दोनों का सामूहिक प्रातिशाख्य माना है। डा० ओम प्रकाश पाण्डेय का मत है कि शौनक से पूर्व शाकल और बाष्कल अलग–अलग शाखाएं थी, शौनक ने दोनों को एक में मिलाया और दोनों के लिए एक प्रातिशाख्य का निर्माण किया जो ऋक् प्रातिशाख्य है[9] ऋक् प्रातिशाख्य के एक हस्तलेख में इसे 'आश्वलायन पार्षद प्रातिशाख्य' के नाम से उद्धृत किया गया है[10] ऋक् प्रातिशाख्य

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

में संज्ञा, संहिता, स्वर, वर्ण विकार, समास, कम पाठ सम्बन्धी नियम, वर्णों के उच्चारण स्थान तथा उत्पत्ति, उच्चारण दोष, वेद पारायण के नियम तथा छन्दों का वर्णन किया गया हैं।

तैतिरीय प्रातिशाख्य– कृष्ण यजुर्वेद का एकमात्र उपलब्ध यह प्रातिशाख्य नाम के अनुसार तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित होना प्रतीत होता है यद्यपि इसके कुछ उदाहरण उपलब्ध तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त नहीं होते। इसे कृष्ण यजुर्वेद की औखाय शाखा से सम्बद्ध भी माना जाता है। विषय वस्तु की दृष्टि से सम्पूर्ण प्रातिशाख्य तीन भागों में विभक्त है ।

प्रथम भाग– प्रथम चार अध्याय साधारण विधि भाग कहा जाता है । इसमें सहिता पाठ, पद पाठ, कम पाठ की साधारण विधि तथा तदुपयोगी वर्ण संजा आदि की साधारण विधि का वर्णन है । प्रथम अध्याय में संज्ञाए, द्वितीय अध्याय में वर्णों की उत्पत्ति, स्थान तथा प्रयत्न, तृतीय अध्याय में संहितागत कुछ दीर्घ पदों का पदपाठ में हस्वविधान के उदाहरण तथा चतुर्थ अध्याय में प्रहगृहसंज्ञक वर्णों की गणना है।

द्वितीय भाग– पंचम अध्याय से लेकर द्वादश अध्याय तक का भाग संहिताधिकार विधि कहा जाता है पंचम अध्याय में संहिताकाल में होने वाले आगम, विकार और लोप सम्बन्धी विधियां, षष्ठ अध्याय में पकार भाव, सप्तम अध्याय में णत्व तथा त थ को ट ट भाव, अष्टम अध्याय में वर्ग के प्रथम वर्णों का वर्ग के उत्तम वर्ण में परिवर्तन होना वर्णित है । नवम अध्याय विसर्ग का लोप, ए, ओ, ऐ, औ तथा ड. यू वर्णों के विकार वर्णित हैं। दशम अध्याय में सवर्ण दीर्घ, य् ब लोप, प्लुत, प्रगृहय वर्णों में संध्यभाव का वर्णन है । एकादश अध्याय में अकार के लोपालोप का विधान है। द्वादश अध्याय में अकार लोप विधि तथा लुप्त अकार से पूर्व की स्वरितादि विधि का वर्णन है।

तृतीय भाग– त्रयोदश अध्याय से चतुर्विंशति अध्याय तक का तृतीय भाग उच्चारणकल्प कहा जाता है । इसमें उच्चारणोपयोगी तीव्रतर प्रयत्नादि का वर्णन है । इस भाग में मकार लोप, समानपदीय नकार का णकार, वकार का उकार, द्वित्व, आगम, अनुनासिक अनुस्वार विधियां, प्रणव की स्वर विधि, कम्प विधि, स्वरित विधि, स्वर भक्ति, कतिपय अव्यय पदों का अर्थ निर्णय, मात्रा काल, गुरू लघु संज्ञा, कुष्टादि सप्त स्वर तथा वेदाध्येता के लिए आवश्यक नियमों को वर्णित किया गया है ।

वाजसनेयि प्रातिशाख्य– शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र उपलब्ध प्रातिशाख्य वाजसनेयि प्रातिशाख्य है । यह प्रातिशाख्य शुक्ल यजुर्वेद की 'काव्य' तथा 'माध्यन्दिन' दोनों शाखाओं के स्वर एवं वर्णोच्चारण सम्बन्धी व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह प्रातिशाख्य वाजसनेयि संहिता के स्वर और संस्कार के विषय में विवेचना करता है ।

स्वरसंस्कारपोरछन्दसि नियमः" "इत्याह स्वरसंस्कार प्रतिष्ठापयिता भगवान् कात्यायनः"[11] वाजसनेयि प्रातिशाख्य में आठ अध्याय हैं। सभी अध्यायों में कुल 79 सूत्र है । इन सूत्रों के द्वारा वेदाध्ययन विषयक सामान्य नियम, स्वर, संज्ञा विचार, सहितागत लोप, आगम विकारादि संस्कार, पदपाठ, कमपाट, अवग्रह नियम, आख्यातोपसर्ग के स्वर विषयक नियम, अवसानस्य वर्णों की 'इति' के साथ संधि तथा वर्ण समाम्नाय स्पष्ट किए गए हैं।

इस प्रातिशाख्य के रचयिता शौनक की शिष्य परम्परा के विद्वान कात्यायन है । इन्होंने ऋग्वेद सर्वानुकमणी भाषिक मूत्र आदि महत्वपूर्ण इन्धों का प्रणयन किया। पूर्व अष्टाध्यायी सूत्रों के वार्त्तिककार वररुचि कात्यायन से भिन्न है यह प्रातिशाख्य ऋक् प्रातिशाख्य से अर्वाचीन है । इसका स्थिति काल विक्रम पूर्व अष्टक शतक में संभावित किया जाता है[12]

ऋक् तंत्र– यह सामवेदीय प्रातिशाख्य है । इसे कई विद्वानों ने व्याकरण का ग्रन्थ कहा है किन्तु पाश्चात्य विद्वान हिटने ने चतुरख्यायिका की भूमिका में इसे प्रातिशाख्य घोषित किया है । डा0 सूर्यकान्त ने इसे प्रातिशाख्य के अन्तर्गत स्वीकार किया हैं[13]

इस ग्रन्थ में स्वर और व्यंजन का लक्षण, समासगत संधियां, उच्चारण स्थान, यम, अभिनिधान, द्वित्व, वृत्ति तथा स्वरप्रकरण की विवेचना, स्वर प्रकरण का विस्तार तथा संहिता बनाते समय पदों में होने वाले परिवर्तन का विश्लेषण किया गया है । इसमें समास में विभक्ति का लोप, प्रगृह्य स्वरों तथा सन्धिजन्य परिवर्तनों को स्पष्ट किया गया है

सामतन्त्र– यह भी सामवेद की कौथुम शाखा का प्रातिशाख्य हैं। ऋक् तव की समाप्ति पर जो सूत्र है वही सूत्र सामतन्य के आदि में है। अतः ऋ तत्र का परवर्ती है। कुछ लोग इसे ऋ तन्त्र का ही उत्तर भाग अनुमानित करते हैं। सामतन्त्र में सामयोनि ऋचाओं के सामगान कालिक विकारों का विवेचन है। यह प्रातिशाख्य साम की लघुतम इकाई पर्व की संरचना तथा उसकी विविध संज्ञाओं का उल्लेख करता है। यह ग्रन्थ सामयोनि ऋचाओं के आभ्यन्तर विकारों का विधान करता है। इसमें 34 विकारों का उल्लेख किया गया है सामवेद सर्वानुक्रमणी के अनुसार सामतन्त्र में 15 प्रपाठक हैं। अन्तिम दो प्रपाठक सामतन्त्र के रूप में मान्य नहीं हैं प्रत्येक प्रपाठक दशक या खण्ड में विभक्त है सभी प्रपाठकों के कुल 13 खण्ड तथा 1311 सूत्र हैं । सामसर्वानुकमणी स्पष्ट रूप से औद्वाज को सामतन्त्र का कर्ता मानती है डा0 सूर्यकान्त ने भी यही

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

स्वीकार किया है।

अक्षरतन्त्र– यह भी सामवेद का काथुमशास्त्रीय प्रातिशाख्य है। यह सामतन्त्र का उत्तरभाग है। यह ग्रन्थ सामयोनि ऋचाओं के बाह्य विकारों का वर्णन करता है। बाह्यविकार का अर्थ है ऋग्यतिरिक्त विकार। इन्हें 'स्तोभ' कहा जाता है। स्तोभ ही यहां अक्षर के रूप में परिभाषित है । सामगान में प्रयुक्त ऋग्व्यतिरिक्त सार्थक या निरर्थक ध्वनियां स्तोभ या अक्षर हैं। 16 दशकों में उनका विधान किया गया है। कुछ स्तोम ध्वनियां है औ, हो, ओ, होड़, बा, उ हुन्वा, इम, इह, इ, अ, क्यों बा इडा, वि, दु, ये, वे, ह आदि 17 से 25 खण्डों में जिन स्वरों का विधान है उनकी पृथक संजाए है। अक्षरतन्त्र में वान्तादि पर्वो का भी उल्लेख मिलता है।

पुष्पसूत्र– यह प्रातिशाख्य सामवेद की कौथुमशाखा की गान संहिता से सम्बन्धित है। इस प्रातिशाख्य में विभिन्न योगों में गाए जाने वाले स्तोत्र, ऊहगान में गाए जाने वाले साम, भाव तथा प्रगाध में विकारों का वर्णन किया गया है। मैक्समूलर इस प्रातिशाख्य के रचयिता 'गोमिल' को मानते हैं। ए० सी० बर्नेल उल्लेख करते हैं कि उत्तर भारत की परम्परा में गोभिल को तथा दक्षिण भारत परम्परा में वररुचि को पुष्पसूत्र का कर्ता स्वीकार किया जाता है[14]

चतुरध्यायिका– चतुरध्यायिका अथर्ववेद की शौनकीया शाखा से सम्बन्धित है किन्तु इसमें प्राप्त अनेक नियम शौनकीय अथर्व संहिता में पूर्णरूपेण घटित नहीं पाए जाते हैं। हिटने ने सन् 1862 में इसे अथर्ववेद प्रातिशाख्य के नाम से प्रकाशित किया था। किन्तु डा० सूर्यकान्त ने अथर्ववेद प्रातिशाख्य के सम्पादन के समय यह निष्कर्ष निकाला कि अथर्व प्रातिशाख्य के हस्तलेखों में अथर्वप्रातिशाख्य ही अंकित है, चतुरध्यायिका नही।

"व्हिटने ने 'शौनकीया चतुरध्यायिका" नाम से अंकित दो हस्तलेखों को अपनी चतुरध्यायिका का आधार बनाया और उसी को अथर्वप्रातिशाख्य के नाम से प्रसिद्ध कर दिया । डा0 सूर्यकान्त ने प्रमाणित किया है कि चतुरध्यायिका अथर्ववेद शौनकीया शाखा से सम्बन्धित है और अथर्व प्रातिशाख्य पृथक है[15] चतुरध्यायिका में चार अध्याय हैं, जिनमें कुल 434 सूत्र है । इस ग्रन्थ में वर्ण समाम्नाय नहीं है संक्षेप शैली में ही महत्वपूर्ण विषयों की विवेचना है इसमें अभिनिधान, स्वरभक्ति, यम, वर्णकम, पादादि तथा पादान्त व्यंजन, विसर्जनीय, स्वरसन्धियां प्रगृह्य, स्वरित, पद पाठ और संहिता पाठ परिवर्तन, वेदाध्ययन सम्बन्धी नियम, द्वित्व काल, संहितागत परिवर्तन, वर्णों के उच्चारण स्थान करण प्रयत्न आदि ध्वनि विषयक प्रचुर सामग्री है। इस प्रातिशाख्य की महत्वपूर्ण विशेषता है कि नियमों के निर्माण में गणों का बहुतायत प्रयोग मिलता है जिसके कारण यह संक्षिप्त और सश्लिष्ट है ।

अथर्व प्रातिशाख्य– यह अथर्ववेद का सामान्य प्रातिशाख्य है। इसके संक्षिप्त और वृहद् पाठ मिलते हैं। डा० सूर्यकान्त ने दोनों प्रकार के पाटों का एक साथ सम्पादन किया और दोनों का समानान्तर पाठ दिया। संक्षिप्त अथर्व प्रातिशाख्य प्रपाठकों में विभक्त है। प्रपाठक पादों में विभक्त है तथा पाद में सूत्र है। कुल सूत्र संख्या 221 है। बृहत् अथर्व प्रातिशाख्य में तीन प्रपाठक हैं। प्रपाठकों में 69 उपविभाग हैं । समस्त सूत्रों की संख्या 420 है। अन्य प्रातिशाख्य पदपाठ से संहितापाठ बनाने में प्रवृत्त हैं जबकि अथर्व प्रातिशाख्य संहिता से पदपाठ बनाने का नियम प्रस्तुत करता है। "सन्धि भास्वाणि पदसन्धानार्थं प्रोक्तानि"।[16] इस प्रातिशाख्य में ध्वनिशास्त्र विषयक नियमों की व्याख्या नहीं प्राप्त होती है तथा इसमें केवल सन्धिविषयक नियम उपलब्ध होते हैं । डा0 सूर्यकान्त के अनुसार सामान्य संधि के लिए यह चतुरध्यायिका या सामान्य व्याकरण का सहारा लेता है[17] प्रतीत होता है कि अथर्व प्रातिशाख्य का मूल स्वरूप वर्णनात्मक था, किन्तु सूत्र ग्रन्थों के प्रभाव से यह ग्रन्थ भी सूत्रात्मक हो गया[18] प्रातिशाख्य ग्रन्थों का मुख्य प्रयोजन संहिता के वास्तविक स्वरूप की रक्षा करना था । प्रातिशाख्य ग्रन्थों में शाखा से सम्बन्धित संधि, वर्ण, पदपाठ, छन्द, क्रमपाठ आदि का वैज्ञानिक विवेचन प्राप्त होता है।

प्रातिशाख्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन ऋषियों ने भाषा विज्ञान की सचेत दृष्टि रखते हुए वैदिक वाङ्गमय को शुद्ध करने का महान प्रयास किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काशिका 2/4/3 तथा मालतीमाधवम् 1926 । (निर्णयसागर सं०) पृ० 6.
2. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पं० युधिष्ठिर मीमांसक पू0 328.
3. भाषा विज्ञान की भूमिका डा० भोलानाथ तिवारी पू० 223.
4. वेदांग डा० कुन्दन लाल शर्मा पृ० 59.
5. वेदांग डा० कुन्दन लाल शर्मा पू0 57.
6. ऋक् प्रातिशाख्य पर भाष्य पृ० 25 तथा।

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

7. ऋ० प्रा० (उव्वट भाष्य)।
8. ऋ० प्रा० (उपोद्घात)।
9. संस्कृत वाङ्गमय का वृहद इतिहास (वेदांग) डा० ओम प्रकाश पाण्डेय – पृ० 9.
10. तत्रैव ।
11. वाजसनयिक प्रातिशाख्य (1.13), (8.61)।
12. सं० वा० का वृ० इति (वेदांग) डा० ओम प्रकाश पाण्डेय (पृ0 15)।
13. ऋक् तंत्र (सं० सूर्यकान्त) भूमिका पृ0 2.
14. आर्षेय ब्राह्मण (भूमिका) (ए० सी० बर्नेल) पृ0 23.
15. अथर्व प्राति० (०) डा० सूर्यकान्त पृ0 31.
16. अथर्व प्रातिशाख्य 2–ब।
17. अथर्व प्राति० (उपो०) सूर्यकान्त पृ0 67–69.
18. सं० वा० का ० इति (वेदांग) – डा० ओम प्रकाश पाण्डेय पृ० 34.

*****